मनुष्य बनो

जून
६०

शरणागति, शुभ संकल्प,

क्षमा, प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णं मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ३६	जून १९९०	अङ्क ६

(गाफिल शब्दावली से)

शब्द

जिसको विश्वास है मालिक पर, मालिक उसका रखवारा है।
अन्तर भी वह बाहर भी, सब में रहकर न्यारा है।१।
हर चीच में उसकी सत्ता है चींटी से लेकर हाथी तक।
सब उसके हैं-वह सबका है, हर इक का वही सहारा है।२।
हम सबकी उसको चिन्ता है, वह सबका पालनहारा है।
जा उसका हुआ वह उसका है, गीता ने यही पुकारा है।३।
वह सुख में भी और दुःख में भी,हर इक का सहायक होता है।
जिसने उसका दामन पकड़ा, दुःख से उसका छुटकारा है।४।
हमें चाहिये उसको याद करें,जिसकी यह सृष्टि सारा है।
जो डूबने लगे समुन्दर में, उसने ही उन्हें उभारा है।५।
जिसका दिल उसके चरणों में,लौलीन हुआ आधीन हुआ।
भवसागर में जो गोते खाते, उनको उस पार उतारा है।६।
जिसका कोई बने न दुनियाँ में, उसका भगवान तो बनता है।
'गाफिल'जो उसकी शरण हुआ,उसको वह सबसे प्यारा है।७।

मासिक सन्देश

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश

परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

इस मासिक सन्देश में दौरे की सूचना देने से पहले मैं कई वर्षों से चले हुए दान, यज्ञ, तप और कर्म के सन्तमत के दृष्टि-कोण से दिये गये विवेचन की पूर्ण आहूति करना चाहता हूँ। मैंने इन चारों सोपानों के बारे में अपने अनुभव के आधार पर आपको यह बताने की कोशिश की है कि सनातन धर्म और सन्त मत किसी भी दृष्टि से एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। न ही संनातन धर्मी और न ही सन्त मत के अनुयाई या पथाई कर्म के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हैं। पहले भी कहा जा चुका है कि समस्त ब्रह्माण्ड कर्म के आधीन है। इस जगत के अन्दर स्वयं परम तत्व आधार भी इस सिद्धान्त को भग नहीं करता। किन्तु कर्म सिद्धान्त का प्रतिकार बताता है। वह प्रतिकार जगत् में कर्म करते हुए, अपने आपको पराभक्ति के द्वारा सद्गुरु एवं दयाल पुरुष के शरणागत कर देता है। दया का सिद्धान्त कर्म बन्धन को एक ही जन्म में काट देता है।

श्रीमद् भगवद गीता आदि से लेकर अन्त तक सन्त मति के इसी दृष्टिकोण को सुचारु रूप से प्रस्तुत करती है। यद्यपि जीव अपने कर्मों के कारण ही बन्धन में पड़ता है तथापि वह अपने कर्म को नि. स्वार्थ भाव से करता हुआ बन्धन से मुक्त भी हो सकता है। इसी मार्ग को या योग को निष्काम कर्म योग कहा गया है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश

देते हुए कहा है—

कर्म ही में अधिकार है तेरा ।
परिणाम की मत कर चन्ता ।।
फल को कर्म का लक्ष्य मत बना ।
न ही अकर्म से कर तू मित्रता ।।

निष्काम कर्म योग हमें यह आदेश नहीं देता कि हम कर्म को त्याग दे या हमारा कर्म किसी भी लक्ष्य के बिना हो। कोई भी कर्म बिना उद्देश्य के नहीं हो सकता और हम क्षण भर के लिये भी कर्म के बिना इस जगत में जीवित नहीं रह सकते। बात सिर्फ इतनी है कि हमारे कर्म का उद्देश्य साँसारिक सुख और लाभ न होकर एक ऐसा ऊंचा लक्ष्य होना चाहिए, जिसके पा जाने से हमारे लौकिक, उद्देश्य और लौकिक आवश्यकताऐं बिना प्रयास के ही पूर्ण हो जायें। निष्काम कर्म योग भी जीव को उसी परम शान्ति पर पहुचा देता है जो वैराग्य के द्वारा या सन्यास द्वारा प्राप्त होती है। आम लोग यह भूल कर बैठते हैं कि कर्म करने से व्यक्ति बन्धन में पड़ता है। अर्जुन इसी भ्रम में पड़ गया था। उसने भगवान श्री कृष्ण से पूछा – एक ओर तो आप मुझे बता रहे हैं कि कर्म बन्धन में डालता है और दूसरी ओर आप मुझे युद्ध करने को कह रहे हैं। आपके वाक्य मुझे भ्रम में ड ल रहे हैं। कृपा करके मुझ निश्चित रास्ता बताइये।" भगवान कृष्ण ने उसका उत्तर देते हुए यही कहा– "सांख्य योग या ज्ञान योग जिस लक्ष्य पर पहुचाता है, कर्म योग भी जीव को उसी स्तर पर ले जाता है। न ही केवल इतना बल्कि आरम्भ में हर एक साधक चाहे वह ज्ञान योगी हो, चाहे कर्म योगी, कर्म के द्वारा ही योग की सीढ़ी पर चढ़ता है और अन्त में उसी मंजिल पर पहुंच जाता है, जिस पर पहचकर जीव सभी कामनाओं और

इच्छाओं से मुक्त होकर परम शान्ति प्राप्त करता है।'

अब प्रश्न यह है कि कर्म का परमलक्ष्य क्या होना चाहिये ? इस सम्बन्ध में भगवद् गीता में दो लक्ष्य बताये गये हैं। एक है आत्म शुद्धि और दूसरा है भगवद् प्राप्ति। आत्म शुद्धि के सम्बन्ध में, सत्पुरुष भगवान कृष्ण ने कहा है :—

"कायेन मनसा बुद्धया केवलेरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संग त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।

अर्थात् योगी एवं साधक बुद्धि से, मन से, शरीर से और ज्ञानेन्द्रियों से हमेशा आत्मशुद्धि के लिये कर्म करता है। वह साधक ज्ञान और योगी भी हो सकता है कर्म योगी भी हो सकता है और भक्ति योगी भी हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक साधक आयुपर्यन्त क्रियाशील जगत में रहता है और निरन्तर कोई न कोई कर्म करता रहता है। इसलिये कोई भी योग एक व्यापक दृष्टि से कर्म योग ही है। सुमिरन, ध्यान, भजन भी कर्म है। ज्ञान योग के द्वारा सन्यास की अवस्था को प्राप्त करना भी कर्म है। इसलिये हर एक युग में हर एक साधक अपने लक्ष्य की ओर कर्म से ही आरम्भ करता है। वह कर्म की सीढ़ी से ऊपर चढ़ता है और कर्म के शारीरिक, मानसिक आत्मिक एवं पिंड, ब्रह्माण्ड तथा पराब्रह्माण्ड के दर्जो से गुजरता हुआ, अन्त में परम शान्ति एवं परमधाम को प्राप्त होता है। इसी दृष्टि से अर्जुन का मार्गदर्शन करते हुए सद्गुरु भगवान कृष्ण ने कहा :—

"आरुरुक्षोर्मुनेर्योगि कर्म कारणमुच्यते।
योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।

अर्थात् योग के आरुढ़ होने की इच्छा वाले मननशील

(—शेष पृष्ठ २१ पर)

(माह मई के पृष्ठ ६६ से आगे)

जो कुछ होगा वह कायम नहीं रहेगा। और जो मुरशिद रहमान की मदद से होगा वह हमेशा कायम रहेगा।"

यह राधास्वामी मत की उपासना है। उपासना की यह अभी प्रारम्भिक सीढ़ी है। अभी इसकी और सीढ़ियाँ हैं जो धीरे धीरे वर्णन की जायेंगी।

—:o:—

इकतालीसवां वचन

गुरु की पहिचान

हिन्दी में एक प्रसिद्ध कहावत है—"पानी पीजे छानकर गुरु कीजिये जान कर," और यह नियम वास्तव में अमल में लाने के योग्य है।

दुनियाँ में जिस तरह हर बात की दुकानदारी है वैसे ही मजहब भी उससे खाली नही है। अक्सर लोगों ने सन्तों के मार्ग को जीविका का साधन बना लिया है और भोले भाले लोग जहाँ एक बार उनके जाल में फंसे तो उन्हें इस तरह पट्टी पढ़ा दी जाती है और बुद्धि की आँखों पर ऐसी पट्टी बाँध दी जाती है कि कुछ समय के लिये अथवा जन्म भर के लिये अपनी विवेक शक्ति को व विस्तृत दृष्टि को त्यागकर गुरु ही को अपने गले की जंजीर बना लेते है और कट्टर, पक्षपाती और संकीर्ण हृदय होकर सन्त मत के वास्तविक अभिप्राय से कोसों दूर जा पड़ते हैं। मजहब और गुरु, साधन और अभ्यास मुक्ति के साधन हैं। जब यह स्वयं ही बन्ध और प्रतिबन्ध के रूप बन जायें तो फिर किसी से छुटकारे की क्या आशा की जाय। कबीर साहब ने ऐसे लोगों को गुरु पशु और मत पशु कहा है

इस कारण पग पग पर सोचने और समझने की आवश्यकता है।

परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि झूठी गुरु-आई करने वाले हर जगह रहते हैं। सृष्टि की व्यवस्था सचाई पर ही निर्भर है। यहाँ सच्चे भी हुआ करते है। यह झूठे भी उन्हीं सच्चों की नकल करके अपनी जीविका चलाते हैं। जिज्ञासू को विवेक से काम लेने की आवश्यकता है। यदि वह विवेक से काम न लेगा तो सम्भव है कि वह झगड़ और संकट में पड़ जाय।

गुरु का पहिचानना भी सरल काम नहीं है। यदि बाह्य आचार, आकृति और रंग रूप भी अच्छे हों और कुछ सिद्धि शक्ति भी दिखायी दे तो क्या हुआ। इसमें भी धोखा होता है क्योंकि यह इष्ट पद नहीं है।

'सार वचन राधास्वामी' गद्य में एक जगह वाणी आती है और वह विचार करने के योग्य है। वचन है:- 'सतगुरु की पहिचान मुश्किल है। जिसके सतगुरु को पहिचाना वह निर्भय हो गया। क्योंकि जिस किसी को दुनियाँ के हाकिम से पहिचान हो जाती है, वह किसी को ख्याल में नहीं लाता और सद्गुरु जो कुल के मालिक हैं, उनकी पहिचान जिनको आ गई उसको फिर किसी का डर नहीं रहा। यह बात किसी बिरले जीव को हासिल होगी और जीवों का तो यह हाल है कि दुनियाँ के डर से सतगुरू को छोड़ देते है तो फिर सतगुरू की पहिचान कैसे हो। असल में जीव की ताकत नहीं कि सतगुरु को पहिचान सके। दुनियां के हाकिम हुकूमत से सबको डराते हैं और सतगुरु अपने को प्रगट नहीं करते हैं बल्कि ससार में जीवों की तरह से बर्ताव करते हैं। इस बजह से जिस पर उनकी दया है वही पहिचान सकता है। दूसरे की ताकत नहीं है।

इस वाणी में कई एक बातें विचारने के योग्य है। पहली बात यह है कि सच्चे फकीरी का जीवन साधारण मनुष्य की तरह सीधा सादा होता है। दूसरी बात यह है कि वह अपने सत्गुरु होने का विज्ञापन नहीं करते। तीसरी बात यह कि वे किसी को डराते धमकाते नहीं,न ही सिद्ध शक्ति का भयदिलाते हैं,जहां देखो कि ऐसे सामान हैं जहाँ सचाई नहीं ठहरती है।

बड़ी कठिन बात है। लोगों की दृष्टि में यही पहचान के लक्षण हैं। वह जिसका तड़क-भड़क का रहना देखते हैं जो अपनी गुरुआई का विज्ञापन करता है और जो अधिकतर लोगों को शिष्य बनाने का लालच देकर कहता रहता है यदि तुम मेरे पास न आओगे तो मैं तुम्हारी हानि करा दूंगा। उसकी ओर सर्वसाधारण का झकाव होता है। फिर क्या किया जाय इसके सम्बन्ध में हुजूर महाराज की वाणी है :—

रूप रंग उसका मत देख।
श्रद्धा भाव निशाना पेख ।।

अर्थात उसकी बाह्य आकृति रूप रंग पर न जाओ। केवल उसकी श्रद्धा[1] भाव की देखकर उसके विश्वासी बनो मगर क्या यह सुगम है ?

बाह्य लक्षणों के पुजारी को तो केवल बाह्य बातों ही का ख्याल रहता है। वह तो उन्हीं पर मरते हैं जिनके पास बहुत से आदमी आते हैं और जिनकी दुकान अच्छी तरह चली हुई है वह उसी को ओर झुकते हैं। विज्ञापन इस युग की विशेषता है जो अपना विज्ञापन कराना जानता है वही सफल होता है। जिसे विज्ञापन करना नहीं आता वह हाथ पर हाथ धरे बैठा

---

१. श्रद्धा—अर्थात ईश्वर के पूज्यनीय होने का विश्वास और उसके अनुसार आचरण।

रहता है। इश्तहार बाजी करने वालों का श्रद्धा भाव स्वयं उसको झूठा सिद्ध करता है, मगर इस पर सोचता कौन है ? दुनियां भेड़ धसान है। जिधर एक भेड़ गई उधर ही सारी भेड़ें चल दीं। इसका किसी को भी विचार नहीं होता कि वह पहिली भेड़ कुंए में गिर रही है या वह अपने ठीक रास्ते पर चल रही है।

कबीर साहब की वाणी है :—

लालों की नहिं बोरियाँ, हंसों की नहिं पाँत।
सिंहों के लंहड़े नहीं, साध न चल जमात॥
जौन चाल संसार को, तौन साध की नाहिं।
दंभ चाल करनी करे, साध कहौ मत ताहि॥

दुनियाँ में सामाजिक सम्प्रदायों का जोर है। जमात की करामात मशहूर है। अधिकतर साधु जो दुकानदार हैं, सामाजिक बातों की ओर झुककर मनुष्यों को अपनी ओर लाने के उद्देश्य से ऐसे काम करते कराते हैं जो दुनियादारों को पसंद है। किसी ने धर्मशालाऐं बनाया। किसी ने कुंआ खुदवाया। किसी ने सदावर्त चलाया। किसी ने पाटशाला की नींव रक्खी किसी ने अपना तालाब बनाया। यह सब सामाजिक बातें हैं जिनका सम्बन्ध सामाजिक व्यक्तियों या सामाजिक संस्थाओं से हैं। इससे किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि यह परोपकार के सामान हैंऔर परोपकार करना बहुत अच्छा स्वभाव है मगर इनसे अध्यातम का असली लाभ हाथ नहीं आता। वह कोई और ही वस्तु है। उसका घर और है।

ऐसी दशा में फिर क्या करना चाहिए। यदि बाहरी बातों को ही कोई मनुष्य आदर्श ठहराता है तो उसके विषय में भी सन्तों और फकीरों की वाणियाँ हैं। यदि उन्हीं से काम लिया जाय तब भी थोड़ी सी सन्त की पहिचान हो सकती है। पूर्ण

रूप में उसके बारे में निर्णय नहीं किया जा सकता। हुजूर महाराज का कथन है :—

गुरु का निरख आंख अरु माथा।
सत का नूर रहे जिस साथा।।
जब वे घट का हाल सुनावें।
नभ की ओर सुरत मन धावें।

अभिप्राय यह है कि फकीर या सन्त का चौड़ा माथा और दोष रहित (बेनुक्स) आंख उसके तेज और सौम्यता को प्रकाशित करने वाले लक्षण हैं और उसके उदार हृदय होने के चिह्न हैं। जिसका माथा चौड़ा होगा वह हृदय का उदार, बुद्धि का तीव्र और साहसी होगा। जिसका माथा संकीर्ण होगा उसका हृदय संकीर्ण, बद्धि क्षुद्र होगी और कम साहसी होगा : यह मुखाकृति विज्ञान (कयाफा) की बातें हैं। इसी प्रकार आँखों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। चमकीले और बड़े-बड़े नेत्र मनुष्य के हृदय की उदारता के प्रमाण हैं। यदि नेत्रों में किसी प्रकार का जन्म से हो दोष होगा तो उससे उदार हृदय होने की आशा रखना अज्ञानता और मूर्खता है। नेत्रो के दोष वालों में शील मुरौवत) नहीं होता। दोषयुक्त नेत्रों वाला अधिकतर खेंचादानी करता रहेगा और शान्ति जाती रहेगी। यह बातें मनुष्य के अनुभव की हैं जो सैकड़ों वर्ष से सच्ची चली आती हैं। इसी प्रकार अन्य दोषों का हाल समझ लो। इसकी वशेष व्याख्या करना व्यर्थ है। समझने वाले के लिये इतना ही बहुत है।

दूसरी चौपाई का अर्थ यह है कि जब वे ऊंचे स्थान के विषय में वर्णन करेंगे तो मन और तवज्जह (सुरत) का रुझान स्वयं ऊपर के लोकों की ओर होता जायेगा जिसका मतलब

से खाली नहीं होती क्योंकि वह कमाई की हुई होती है और सुरत के जिस स्थान पर उसके मन की बैठक होती है उस स्थान की बिजली के आनन्द और उत्तेजना से भरे हुए प्रभाव सुनने वालों में भी उत्पन्न हो जाते हैं।

यह दो बाहरी पहिचान हैं।

तीसरी पहिचान उसका निस्वार्थ जीवन है।

इससे अधिक बातें भी राधास्वामी मत में गुरु की पहिचान के बारे में बतायी गयी हैं मगर उनके झंझट में कोई क्यों पड़े। 'सार वचन राधास्वामी पद्य' की वाणी यहाँ दी जाती है :—

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई ।।
शब्द बतावे सो गुरु पूरा। इन चरनन की होजा भूरा ।।
और पिछान करो मत कोई। लक्ष अलक्ष न देखो सोई ।।
शब्द भेद लेकर तुम उनसे। करो कमाई तुम तन मन से ।।

—:o:—

बयालीसवां वचन

गुरु की सेवा

गुरु की सेवा राधास्वामी मत का कर्म काण्ड है। कर्म करने वाले के सामने गुरु का इष्ट हर समय सामने रहता है। शरीर के सब अंग गुरु के प्रसाद से पवित्र होते हैं। दर्शन करने के कारण गुरु की मूर्ति हर समय आँखों के सामने रहकर मन में स्थान पाती जाती है। सेवा स्थूल प्रकार की कमाई अवश्य है और यह प्रारम्भिकअवस्था के लोगों के लिये है। प्रारम्भिक अवस्था से यह अभिप्राय है कि जो अभी सूक्ष्म मण्डल में नहीं

और विद्युत के प्रभावों के अधिकारी होते जायेंगे और वही भाव उनमें दिन व दिन होते जायेंगे।

कहने को तो यह प्रारम्भिक क्रिया है मगर यह अन्तिम भी है। जो आदि है वही अन्त भी है। प्रारम्भ में इसकी समझ आनी कठिन है। जब थोड़े अध्यात्म के मरहले तै होंगे तब इस सूक्ष्म बात की समझ आयेगी।

योग की पहिली विधि में जो बातें करने और न करने को कही गयी हैं, वहीं यहाँ भी है। दूसरों के साथ जो सम्बन्ध हैं उन्हें ढीला करके छोड़ दो और गुरु को मुख्य समझ लो। गुरु को प्रसन्न रखना अहिंसा है और गुरु को अप्रसन्न रखना हिंसा है क्योंकि गुरु का रूप निर्दोष और पवित्र है।

इसी प्रकार और बातों को भी समझ लो। गुरु ही अध्यात्म की नींव है। जिस प्रकार हो सके उनके प्रति श्रद्धा भाव को हृदय में स्थान देते चलो और काम सुगमता से बन जायेगा।

गुरु की सेवा से पवित्रता आयेगी और अपवित्रता स्वयं ही मिट जायेगी।

इस शरीर में पाँच इन्द्रियाँ हैं और पाँच ही इनके भोग हैं पाँच ही से गुरु की बाह्य सेवा होती है। पाँच ज्ञान इन्द्रियों और पाँच भोग और पांच कर्म का कारण यह है कि इनकी उत्पत्ति पाँच तत्वों से है।

तत्व पांच हैं आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। पाँच तत्वों के सूक्ष्म रूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध हैं। पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ– कान, चर्म, चक्षु, रसना और नाक हैं। इन पाँचों के पाँच ही भोग भी हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।

गुरु की बाह्य सेवा उनके शरीर की सेवा है। शरीर की सेवा शरीर से की जाती है। जब एक शरीर दूसरे को स्पर्श

करता है तो उसके प्रभाव को ग्रहण करता है जैसे लोहा अग्नि से तपाये जाने पर अग्नि के गुण को अपने अन्दर ले लेता है और वही गर्म लोहा पानी में तर किये जाने के कारण ठण्डा हो जाता है और इसी प्रकार समझ लो। इसी प्रकार जो व्यक्ति गुरु की सेवा का लाभ प्राप्त करता है उनके स्वभाव व गुणों का अधिकारी हो जाता है। इस सेवा की व्याख्या हम इस प्रकार करते हैं।

कानों से गुरु के शब्द या वचनों को ध्यान पूर्वक सुनो ताकि यह शब्द उनकी जिह्वा से निकलकर तुम्हारे हृदय में नया जन्म ले। एक ही शब्द कानों केरास्ते प्रवेश होकर दूसरों के हृदय में जन्म धारण करता है। और कुछ न कुछ प्रभाव उसी समय डालता है। किसी ने किसी से कोई कविता सुन ली, याद कर ली, और वह उसकी हो गई। पहले गाने वाले या कहने वाले के प्रभाव को कुछ अ श में अपने साथ लाई। यह उसका नया जन्म है। जिन-जिन लोगों के हृदय में उसने स्थान पा लिया है, वही वही हृदय उसके भिन्न-भिन्न शरीर और भिन्न-भिन्न योनियाँ हैं।

यदि तुम इसी एक बात को भली प्रकार समझ लो तो तुम समझ जाओगे कि एक ही वस्तु किस प्रकार अनन्त योनियां धारण करती है और वह एक होती हुई अनेक का तमाशा दिखाती है। यह एकता और अनेकता का रहस्य है। गुरु के वचनों को विश्वास और शिष्टाचार के साथ सुनो। ताकि ज्यों का त्यों उनका प्रभाव तुम्हारे अन्दर आ जाय। यदि विश्वास और श्रद्धा के साथ नहीं सुना तो वह घर न कर सकेगा। इस कान से सुना उस कान से निकाल दिया। इससे लाभ ही क्या हुआ। सुना अनसुना बराबर हो गया। यह कान की सेवा है।

गुरु के हाथ-पाँव दबाओ, पंखा झलो। आवश्यक सेवाओं के सामान उनको अर्पण करो। यह हाथ की सेवा है। छूने से भी रसायनिक प्रभाव आ जाता है। जैसे हवा के झकोले अपने साथ गर्मी सर्दी और बीमारी के असर लाते हैं। गुरु के रूप का आंखों से टकटकी बाँध कर दर्शन करो ताकि वही रूप तुम्हारे हृदय में बैठ जाय। तुम देखते हो कि कि चेचक के रोगी को केवल देखने से ही अधिकतर हृदय दूषित होकर रोगी बन जाता है। अच्छा रूप देखकर तुम प्रसन्न हो जाते हो। कुरूप को देखकर अप्रसन्न होते हो। इसका क्या कारण है? इसका वही कारण है जो ऊपर बता दिया गया है। गुरु के ध्यान को पक्का करने के लिये गुरु का बार-बार दर्शन करना अनिवार्य है। यह आँखों की सेवा है।

चरणामृत, मुखामृत और हस्तामृत लेना रसना की सेवा है। पानी में यह गुण है कि वह बिजली के प्रभाव को तुरन्त अपने अन्दर ले लेता है। हाथ पाँव और जिभ्या में विशेष प्रकार का प्रभाव रहता है। इनमें स्वास्थ्यप्रद प्रभाव रहता है। तीनों ही से धार के रूप में यह प्रभाव जारी रहता है। किसी बेचैन आदमी के सिर पर हाथ फेरो उसे आराम मिलेगा क्योंकि तुम्हारी उंगलियों के पोरुओं से एक प्रकार का सूक्ष्म मादा निकलता रहता है जो दिखाई नहीं देता लेकिन वह कभी अपने विशेष प्रभाव से खाली नहीं रहता है। यों तो वह शरीर से भी निकलता रहता है लेकिन हाथ को लोग अच्छा समझते हैं। इस कारण अनेक शिष्य पहले चरणामृत, हस्तामृत और मुखामृत पर जोर देते थे। इसी कारण से केवल अपनी अज्ञानता वश लोगों ने राधास्वामी पंथ को झूठा खिलाने का मार्ग प्रसिद्ध कर दिया। यह कोई लाजिमी शर्त नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी मजबूरी भी नहीं है। सच्ची बात जो इसकी

जड़ में है बता दी गई।

नाक की सेवा यह है कि जो हार गुरु को पहनाये गये उनको वापस पाने पर उनको सूंघना। फूल में भी प्रभाव को अपने में ले लेने की सूक्ष्म शक्ति है। फल स्वयं इतने सूक्ष्म होते हैं कि सूक्ष्म वस्तु से मिलने पर ताजे हो जाते हैं और इसके प्रतिकूल दशा में उसी समय मुरझा जाते हैं। यह पाँच प्रकार की शारीरिक सेवा है।

शरीर पाँच तत्वों से बना हुआ है। आकाश, वायु, अग्न, जल और पृथ्वी और इन्हीं तत्वों की सूक्ष्म तन्त्रमालाऐं, शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं और अपने शरीर को पवित्र और प्रभावशाली बनाने के लिये गुरु की वाणी को सुनना उनके हाथ पांव दबाना, उनके रूप के दर्शन करना और गुरु के चरणामृत व प्रसाद लेने की प्रथा है।

यह प्रथा सब संसार के मजहबों में किसी न किसी प्रकार मौजूद हैं। हाँ, उनके रूपों में अवश्य अन्तर है। मन्दिरों का प्रसाद और चरणामृत की नींव भी इसी सिद्धान्त पर रखी गई है तब भी यह कह दिया गया है कि तीन प्रकार की कनिष्ठ सेवा का काम कनिष्ठ श्रेणी के अधिकारी के लिये है। उत्तम अधिकारी के लिये केवल शब्द सुनने व विश्वास, श्रद्धा के साथ दर्शन करने की आज्ञा है। संभव है कि कोई इन बातों को सेवा न कहे। उसकी भी हम लगे हाथों व्याख्या किये देते हैं।

१—गुरु की स्तुति करो, गुरु से प्रश्न करो ताकि वह वचन व संकेतों के द्वारा तुमको उत्तर दें।

२—गुरु के चरणों को हाथ लगाओ।

३—सेवा के उद्देश्य से गुरु के पास जाओ और उनके दर्शन रूपी अमृत का पान करो।

४—उनका खाना पकाओ और खिलाकर प्रसादी लो।

५—उनके लिये पानी भर लाओ, नहलाओ, धुलाओ, जल पिलाओ और चरणामृत लो।

६—उनके गले में पहनाने के लिये फूल चुन लाओ, हार गूंथो, पहनाओ और जो हार वह तुमको देवें उनको पहन लो और उनको सूंघो ताकि तुम में उनका प्रभाव जम जाय।

अब तो यह सब सेवा के काम हुए या नहीं? सृष्टि के नियमों मे हर स्थान हर लेने देने का नियम रहता है। बोलना सुनना, देखना, दिखाना, खिलाना, खाना पिलाना, पीना, सुंघाना सूंघना छूना, छुआना एक ही क्रिया के दो भिन्न रूप हैं।

विचारों के परस्पर लेने देने और अन्य इसी प्रकार क्रियाओं को सेवा का नाम दिया गया है।

—:०:—

तंतालीसवाँ वचन

षट कर्म सेवा (लगातार)

पाँच इन्द्रियों की सेवा का बर्णन हो गया है। अब केवल मन की सेवा शेष रह गई है। पाँच इन्द्रियाँ व मन मिलकर छः होते हैं। इन छः की सेवा के काम को षट कर्म कहते हैं। षट संस्कृत में छः को कहते हैं। मन की शरीर में विशेष स्थिति (हैसियत) है। यही पाँचों इन्द्रियों को चलायमान रखता है और चलायमान रखकर उनकी पीठ पर स्वयं उपस्थित रहता है। इंद्रियों का काम भी होने को तो मन ही का काम है। विना मन के मिले हुए कोई काम नहीं हो सकता लेकिन यह सामान्य काम है और सामान्य होने के कारण मुख्य नहीं कहलाते। मन का मुख्य काम वह है जिसमें वह इन्द्रियों क स्थान

से बेपरवाह होकर अपने ही में चलायमान रहे। ऐसा भी होता है कि इन्द्रियों के काम में मन का आंशिक भाग मिला रहता है और उस आंशिक सहायता के उनका भी काम हो रहा है। और साथ ही साथ मन भी किसी धुन में लगा हुआ है। उस समय मन के काम की वही स्थिति रहती है जैसे कोई स्वामी अपने सेवकों से काम करा रहा है। स्वामी की उपस्थिति से सेवकों के काम में व्यस्त रहने का क्रम चलता रहता है। यह पाँचों इन्द्रियों के काम की हैसियत है।

इस मन को भी गुरु की सेवा में लगा रखना आवश्यक है क्योंकि असली सेवा तो इसी की कहलाती है और जब तक यह षट कर्म अर्थात् पाँच इन्द्रियों और छटे मन से सेवा न की जायेगी तब तक सेवा का असली उद्देश्य पूरा न होगा।

—:०:—

चौवालीसवां वचन

मन की सेवा (लगातार)

कबीर साहब की वाणी है :—

मन दिया कहि और ही, तन साधुन के संग।
कहें कबीर कोरी गजी, कैसे चढ़सी रंग ।।

असली ध्येय तो मन के रंग का है। अगर तन से सेवा की जाती है और मन सम्मिलित नहीं है तो इस सेवा को सेवा कहना भूल है। मन तो मुख्य है और तन गौड़ है। तन को सेवा में इसी अभिप्राय से लगाया गया था कि मन धीरे-धीरे सर्वाङ्ग से सेवा में लगे।

सेवा का उद्देश्य सम्बन्ध उत्पन्न करने से है। सम्बन्ध

जितना गहरा और बलवान होगा उतना ही उसमें अभिमान आयेगा और सम्बन्ध जितना हल्का और दुर्बल होगा उतना ही वह कम अभिमानी होगा। अभिमान का अर्थ इस विशेष स्थान पर अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जब तुमको धन, दौलत महल अटारी और पुत्र कलत्र का अभिमान होता है तब ही तुम उनके रूप बनते हो। संसार के अभिमान को छोड़कर या उसे हल्का करके अब गुरु के अभिमान को दृढ़ करना और गुरु का रूप बनना हैं ताकि शारीरिक और मानसिक भाव हल्के होते जायें और गुरु के व्यक्तित्व का गहरा रंग प्रकट हो और इसी रंग के गहरे करने, करते रहने और कर लेने से जो कुछ गुरु का ज्ञान, गुरु की आन्तरिक सम्पत्ति और गुरु में विश्वासनीय अध्यात्म हैं, वह सब तुम में प्रवेश होते जायेंगे। जिस प्रकार तुम किसी व्यक्ति की मित्रता और संग करते हुए उसके स्वभाव व योग्यता को जानकर या अनजाने अपने में पैदा कर लेते हो उसी प्रकार यहां गुरु के मेल, गुरु के संग, गुरु के प्रेम और गुरु में श्रद्धा विश्वास से अपने आपको उन्हीं जैसा बना सकोगे। इस मेल मिलाप, सेवा संग और प्रेम मैं दरजे होते हैं। और ये दरजे उन सेवा आदि के घने होने से प्राप्त होते हैं।

संग करो यह पहला दर्जा है, सेवा करो यह दूसरा दर्जा हैं, वचन सुनो यह तीसरा दर्जा है, वचन सुनकर उनका मनन करो और उनके मंतव्य को ग्रहण करो यह चौथा दर्जा है और जितना उनको मनन और ग्रहण करोगे उतने ही तुमको साक्षात्कार प्राप्त होंगे यह पाँचवा दर्जा हैं। इसी प्रकार और आगे समझ लेना चाहिए।

सार वचन राधास्वामी की वाणी हैं।—

(मन व बुद्धि की सेवा)

दर्शन करे वचन पुनि सुने, फिर सुन सुन नित मन में गुने।
गुन गुन छाँट लेय उन सारा, सार, धार तिस करे अहारा।
कर अहार पुष्ट हुआ भाई, जग भय लाज सब गई नसाई।
गुरु भक्ति जानो इश्क गुरु का, मन में धंसा सुरत में पक्का॥
एक एक घट में गाड़ा थाना, थान गाढ़ अब हुआ दिवाना।
गुरु का रूप लगे अस प्यारा, कामिनि पति मीना जल धारा॥
सत्संग करना ऐसा चहिये, सत्संग का फल यही सही है॥

दोहा

जब सत्गुरु प्रसन्न होंय, देंय नाम का दान।
दीन होय हिरदे धरे, करे नाम पहिचान॥

इस मन का सेवा के क्रम में फिर सुरति और निरति की सेवा की बारी आयेगी। सुरति कहते हैं तबज्जह को और निरति कहते हैं शुद्ध व घनी तवज्जह को। यह इनके बीच भेद है। यह दोनों स्थितियाँ मन के परे की अवस्थायें हैं जिनमें मन भी सम्मिलित रहता है। मन बीच की कड़ी है जो नीचे अथवा शारीरिक मण्डल में इन्द्रियों के साथ रहता है और ऊंचे मंडल में सुरति व निरति के साथ सम्मिलित रहता है। सुरति में ध्यान का पक्कापन (लय होना) रहता है। सुरति में ध्यान ध्याता और ध्येय का सम्मेलन रहता है। यह ध्यान की त्रिपुटी हैं। निरति में ध्यान के पक्के हो जाने से उसमें ऐसी बेसुधी और आपेपन का विस्मरण और समाधिस्थ अवस्था आ जाती है कि फिर तन बदन का किंचित भान नहीं रहता और गुरु का रंग इतना गाढ़ा हो जाता है कि और रंग उस पर नहीं चढ़ सकता।

सुरति कहते हैं ध्यान की क्रिया को और निरति कहते हैं

ध्यान के साधन में नाच रहने को । यदि तुमने वन में जाकर मोर के नाच को देखा है तो इन शब्दों को भली भाँति समझ सकोगे । यदि नहीं देखा है तो तनिक कठिनता से समझ आयेगो ।

मोर वन में है । तुम इसके पास से निकले । अपने नाच व सुन्दरता दिखाने के अभिप्राय से उसने अपने पर फड़फड़ाये और उन्हें फैला दिया । यहाँ तक तो सुरति की सीमा हैं और अब वह इसी सुरति का सहारा लेकर नृत्य करने लगा और नृत्य में अपने में से नाचने वाला होने का भाव चला गया और शुद्ध आपा रह गया । यही निरति है । नृत्य संस्कृत में साधारणतः नाचने को कहते हैं । सन्त मत या राधास्वामी मत में वह शुद्ध सुरति कहलाती है जिसमें और किसी ख्याल (ध्यान) का तनिक भी मिश्रण नहीं है ।

शब्दों पर कभी न जाओ किन्तु शब्दों के असली अर्थ की ओर ध्यान रक्खो तभी असलियत की समझ आयेगी और यदि शब्दों पर अड़ते हो तो फिर उसके असली अर्थ को हृदयांगम न कर सकोगे । तुम्हारे पास किसी मित्र का पत्र आता है जो लिफाफे के भीतर है । तुम उसे खोलकर, पढ़कर उसके मंतव्य को समझते हो या उसी लिफाफे की सुन्दरता को देखते रहते हो । मन्तव्य ही से असली सम्बन्ध है । पत्र के शब्दों की रंगीनी या लिफाफे और पत्र की सुन्दरता से इतना सम्बन्ध नहीं है । यदि मन्तव्य सुन्दर है और उसके साथ लिखावट की सुन्दर शैली और विषय की रोचकताई भी विद्यमान है तो और अच्छी बात है । इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता किन्तु असली वस्तु तो पत्र का मन्तव्य ही हैं ।

इस सुरति की सेवा के सम्बन्ध में वाणी सुनो ।

अन्तर मुख बैठे एकान्त, अभ्यास करे पावे मान शान्त ।।
दो दल उलट गगन को धावे, मगन होय और नाद बजावे ।।
जोत देख फिर देखे सूर चन्द्र निहारे पावे नूर ।।
सप्त लोक पहुँचे और बसे, सुन सुन धुन तब सुरति हंसे ।।
तब सत्गुरु की जानो महिमा, जिन परताप बाजी धुन बीना ।।
अलख अगम और मिला अनामी, अब कहूँ धन धन राधास्वामी ।।

चूंकि इन सब दर्जों के वर्णन सेआगे के वचनों में विस्तृत रूप से आयेगे, इस कारण केवल संकेत ही किया जा रहा है ।

—:o:—

पैंतालीसवां वचन

मन की सेवा (लगातार)

मन का बन्धन केवल जगत का अभिमान है । यह जगत अनेक रूप वाला है । अनेक को दिल देना बेचैनी और अशान्ति मोल लेना हैं । मन तो एक हैं । इसे मनुष्य कहां कहाँ लगाये । जो कुछ हममें अशान्ति है वह केवल अनेक ओर चित्त लगाने के कारण से है । द्विचिताई में भ्रान्ति रहती है, एकचिताई में निर्भ्रान्ति और शान्ति रहती है । द्विचिताई में दुविधा होती है न इधर न उधर । न सर न पैर । न दीन न दुनियाँ । न लोक न परलोक । द्विविधा में दोनों गये माया मिली न राम । इसी कारण से यह निर्देश किया जाता है कि मन को एक ओर और एक में लगाओ तब द्विविधा और द्विचिताई मिटेगी ।

मगर प्रश्न तो यह है कि इस मन को किस में लगाये ? क्योंकि दुनियां और दुनियाँ के सामान में अवस्थाओं की, आकृतियों की और योग्यताओं की विभिन्नता है । दुनियां तो

पुरुष के लिये योग की प्राप्त में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारुढ़ हो जाने पर योगारुढ़ पुरुष का जो सर्व संकल्पों का अभाव है, वही कल्याण में हेतु कहा जाता है। हम योगारुढ़ अवस्था को राधास्वामी अवस्था एवं ब्राह्मी स्थिति कह सकते हैं। हमने इसी सन्दर्भ में कहा है कि निष्काम कर्म योग अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसलिये हमने पहले ही निष्काम कर्म योग के लक्ष्य बताये हैं, आत्म शुद्धि व भगवद् प्राप्ति कहे गये हैं। आत्म शुद्धि ज्ञान की पराकाष्ठा है और भगवत् प्राप्ति भक्ति की चरम सीमा है।

दूसरे शब्दों में, सभी कर्मों को पूर्णता के उद्देश्य की ओर लगा देने से निष्काम कर्म योगी निस्वार्थ जीवन व्यतीत कर सकता है। आरम्भ में साधक अथवा योगी, किसी न किसी कर्म में जुटकर पूर्णता की सीढ़ी पर चढ़ता है। वह कर्म सांसारिक या व्यावहारिक हो सकता है अथवा पारलौकिक या परम थिक हो सकता है। इस दृष्टि से शरीर द्वारा कर्म, मन द्वाराकर्म और बुद्धि द्वारा किया गया कर्म, कर्म है पूर्णता प्राप्त करने के लिये जितने भी साधन और योग हैं वह कर्म ही है भक्ति भाव भी इस दृष्टि से कर्म मार्ग ही है ज्ञानमार्ग, कर्म मार्ग है। राजयोग, कुण्डलनी योग और सुरत शब्द योग सभी कर्म हैं। जब साधक इनमें से किसी प्रकार के कर्म में अपने आपको भूल जाता हैं और उसका मन अमन हो जाता है, तो उसे वही अवस्था प्राप्त होती है जिसमें वह इच्छाओं से मुक्त होकर आप्तकाम हो जाता।

आप्तकाम साधक की इच्छाऐं और आवश्यकताऐं अपने आप पूर्ण हो जाती है। वह हर प्रकार की चिन्ता, भय आदि से मुक्त हो जाता है। वह न दुख में दुःखी होता है और न सुख में आपे से बाहर हो जाता है। उसे ही बीतराग पुरुष कहा

जाता है । उसे भय, क्रोध आदि नहीं सताते । जैसे पहले कहा गया है उसका स्वभाव उसी प्रकार अचल मर्यादा में रहने वाले समुद्र की भाँति होता है, जिसमें बाढ़ में आयी हुई नदियों के समाविष्ट होने पर भी बाढ़ नहीं आती । यही कारण है कि बीतराग पुरुष मौज में रहता हुआ, हर प्रकार की शारीरिक और मानसिक उथल पुथल में समान रूप से व्यवहार करता है । भक्ति के मार्ग पर चलते हुए, इसी जीवन मुक्ति की अवस्था को चश्मवाहदत्ता अथवा समदृष्टि भी कहा जाता है । भक्त इस अवस्था में हर समय अपने इष्ट को देखता है और उसकी 'मैं' समाप्त हो जाती हैं । इसी अवस्था को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है ।

जब मैं था तब हरि नहीं, जब तू है मैं नाहीं ।
प्रेम गली अति साँकरी, वा में दो न समाहीं ।

पिछले मासिक संदेश में मैंने इस अवस्था की व्याख्या की थी और बताया था कि इसके आगे भी एक और अवस्था है जिसको मैं अगले मासिक सन्देश में अर्थात् इसी मासिक सदेश में प्रस्तुत करूंगा । यह अवस्था जीवन मुक्ति से भी ऊंची अवस्था इसलिये है, क्योंकि इसमें न तो 'मैं' रहता है और न 'तू' रहता है । यह अवस्था राधास्वामी योग की पराकाष्ठा है, जिसे सहज अवस्था कहा जाता है । इसमें साधक को यह अनुभव हो जाता है कि ईश्वर उसमें पूर्ण रूप से नहीं बल्कि अंश रूप में रहता है जबकि साधक ईश्वर में पूर्ण रूप से रहता है इसी अवस्था को बताते हुए कहा गया है :—

माला लेऊं न हरि भजूं, मुख से कहूँ न राम ।
मेरा राम मुझको भजे तब पाऊं विश्राम ।।

मेरे परमप्रिय परमतत्व के अंश सत्संगियो ! सत्संग के प्रभाव से आप सभी इस अवस्था को पा सकते हैं । साधारण

मनुष्य को पहले पहल इस बेख्वाइशी की अवस्था की समझ नहीं आती । जैसे कि पहले मैंने बताया है कि इस अवस्था को पाने के लिये सांसारिक एवं लौकिक आवश्यकताओं का गला नहीं घोंटा जाता और न ही उन्हें छोड़कर जंगल की राह ली जाती है । यह तो केवल अपने इष्ट को सब कुछ समझकर उसी को सब कुछ समर्पित करके, एक ऐसी ऊंची दृष्टि को अपनाना है जो माया और ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष, निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार के भेद भाव को समाप्त कर देती है । यह एक ऐसी रहनी है, जिसमें कुछ करना धरना नहीं पड़ता । इसी को सहज समाधि कहा जाता है ।

साधौ सहज समाधि भली ।
गुरु प्रताप भई जा दिन से, सुरत न अन्त चली ।
जहां-२ जावौ सोई परिकरमा,जो कुछ करौ सो पूजा ।
गृह वन खण्ड एक करि जानों, भाव मिटावौ दूजा ।।
आंखि न मूदों कान न रूंधों, काय कष्ट नहिं धारो ।
खुले नैन हंसि-२ पहिचानों, सुन्दर रूप निहारों ।।
शब्द निरन्तर मनुवाँ राते, मलिन वासना त्यागी ।
ऊठत बैठत कबहूँ न बिसरे, रोसी तारी लागी ।।
कहिं कबीर यह उन्मुनि रहनी, सो परगट कर गाई ।
दुःख-सुख से एक परे परम पद, सो पद है सुखदाई ।।

इस परमसुख की अवस्था को प्राप्त करने के लिये ही सद्-गुरु सत्संग और सत्नाम को अपनाना पड़ता है । इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राधास्वामी योग एवं सुख शब्द योग के अपनाने से मनुष्य का जीवन निष्क्रिय न होकर, सहज का जीवन हो जाता है । दूसरे शब्दों में इस जीवन शैली से व रहनी से यज्ञ, दान, तप और कर्म अपनाने का लक्ष्य पूरा हो

जाता है। सत सनातन धर्म एवं राधास्वामी धर्म या मानवता धर्म उसी सनातन धर्म की चरम सीमा पर है, जिसका आदि और अन्त नहीं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सनातन धर्म और सन्तमत एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। सच्चा राधा स्वामी साधक किसी भी मत का खण्डन नहीं करता और सच्चा सनातन धर्मी कभी भी राधास्वामी मार्ग एवं पराभक्ति मार्ग का खण्डन नहीं करता। यही व्यापक दृष्टि राधास्वामी मत के परमतत्व अवतार पूर्णधनी मालिकेकुल दातादयाल परमसन्त महर्षि शिवब्रतलाल जी वर्मन ने उस शब्द के अन्त में अभिव्यक्त की है जिसमें उन्होंने कहा है :—

बूंद में सिंधु सिंधु में बूंदें, बूंद सिंधु दोऊ एक हुए।
बूंद सिन्धु का झगड़ा संग में, उनके लिये अनेक हुए॥

राधास्वामी सतगुरु आये, भेद दिया पूरा-पूरा।
जो कोई भेदभाव को मेटे, सतगुरु का सेवक पूरा।

सन्त मत की दृष्ट से कर्म की व्याख्या का यहीं समाप्त करते हुये मैं आपको सत्संग के दौरे की सूचना देना चाहता हूँ। पिछले सन्देश में मैंने आपको ६ अक्टूबर १९८९ तक के दौरे की सूचना दी थी। इस बार देहली के हवाई अड्डे पर आचार्य श्री के० पी० वर्मा, उनके परिवार और बहुत से देहली के सत्संगियों के अलावा होशियारपुर से आचार्य शब्दानन्दजी, कु० साधना, प्रदीप खन्ना भी स्वागत के लिये मौजूद थे। इस का कारण यह था कि दशहरे का सत्संग तथा उससे पहले मोदीनगर एवं मेरठ का सत्संग पहले से आयोजित था इसलिये ६ अक्टूबर को ही हमें मेरठ के लिये रवाना होना पड़ा। उसी दिन सायंकाल दोपहर २ बजे के करीब गृहप्रवेश सत्संग हुआ जिसमें मेरठ तथा आसपास के बहुत से सत्संगी सम्मिलित

हुए । हालाँकि मैं बहुत लम्बी यात्रा करके आया था फिर भी सत्संग देते समय मुझे किसी किस्म की थकावट महसूस नहीं हुई । उसी दिन सायंकाल हम मोदीनगर आचार्य S. D. Sharma के घर पहुंच गये ।

सायंकाल बहुत से सत्संगी मिलने के लिये आये । ७ अक्टूबर को मोदी इन्टर कालिज में प्रातः काल और सायंकाल दो सत्संग आयोजित हुए । इन सत्संगों में मोदीनगर निवासियों तथा बुलन्दशहर, मेरठ, बनवारीपुर आदि से आये हुए सत्संगियों की संख्या पहले वर्षों से कहीं अधिक थी । ८ अक्टूबर को प्रातःकाल आशीर्वाद सत्संग हमेशा की भाँति सफल रहा । मोदीनगर के सत्संगियों ने श्री एस० डी० शर्मा द्वारा आयोजित लंगर तथा सत्संगियों के निवास के प्रबन्ध में सहयोग दिया ।

ऐसे अवसरों पर सैकड़ों सत्संगियों का एक साथ बैठकर भोजन करना और रात को एक स्थान पर निवास करना मानवता परिवार के सदस्यों के परस्पर प्रेम और उनकी परस्पर सद्भावना का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करता है । जब इस परिवार के सदस्य प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक मेरे साथ रहते हैं और सत्संगों में शामिल होने के अलावा अपनी समस्याओं को मेरे सामने रखते हैं, तो मुझे वास्तव में ऐसा लगता है कि यह लोग मेरे खून के रिश्तेदार है । उनकी समस्यायें मेरी अपनी ही समस्यायें हो जाती हो जाती हैं । इसलिये मैं उन्हें अपने अनुभव के आधार पर मार्गदर्शन देता हूँ । इस आदान-प्रदान से सत्संगियों का प्रेम और भी बढ़ जाता है । वास्तव में, हमें हर एक सत्संगी को अपने परिवार का सच्चा सदस्य मानना चाहिये । उनको आपस में बिना किसी संकोच

के अपने घरेलू समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करना चाहिए। इस प्रकार यह मानव परिवार लोक और परलोक दोनों को सफल बना सकेगा। इसी सिलसिले में हमने मानव परिवार में मानव विवाह का सिलसिला जारी किया हुआ है इसके फलस्वरूप कई सत्संगी परिवारों में रिश्ता जुड़ गया है और मैंने स्वयं सरल रीति से कई मानव विवाह सम्पन्न कराये है। ऐसे सम्बन्धों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि योग्य सत्संगी परिवारों में योग्य वर ढूंढ कर रिश्ता करते हैं तो वे नये परिवार बहुत सुखी रहते हैं।

मोदीनगर में हमारी दिनचर्या प्रातःकाल ५ बजे वन्दना सत्संग में शुरू होती थी। पहले हम इस सत्संग को शेव का सत्संग कहा करते थे। इन्दौर पर इस सत्संग पर काफी संख्या में लोग दूर-दूर से आया करते थे। प्रातःकाल शेव करते समय प्रायः मेरे पास सत्संगी वार्तालाप के लिये आ जाते थें। इस लिये उस दौरान में मैंने सत्संग देने को प्रथा डाल दी। इस सत्संग में साधना या शब्दानन्द या दोनों अपनी इच्छा से दातादयाल जी के शब्द पढ़ते थे और मैं उस पर सत्संग दे देता था। १९८५ से, जहाँ-जहाँ भी मैं दौरे पर गया यह प्रातः काल का सत्संग चलता रहा। और उसमें सत्संगियों को बहुत आनन्द प्राप्त होने लगा। अक्टूबर, १९८९ से मैंने इस सत्संग का नाम वन्दना सत्सँग रख दिया है। ७ और ८ अक्टूबर को मोदीनगर में वन्दना का सत्संग चला। ८ अक्टूबर को प्रातः काल मैंने आशीर्वाद सत्संग दिया और प्रातः का भोजन जल्दी करने के बाद हम दिल्ली के लिये रवाना हो गये।

उसी रोज सायंकाल करीब ५ बजे हम सलवान पब्लिक स्कूल पहुंच गये। उस समय तक सौ से भी अधिक सत्संगी

पहुंच चुके थे। रात्रि तक उनकी तादाद और भी बढ़ गयी। मेरे कमरे में इन प्रेमी और श्रद्धालु सत्संगियों का ताँता बंधा रहा। सैकड़ों सत्संगी दुर्गापुर, हसनपुर, गाजियाबाद, बनवारीपुर, मोदीनगर, बुलन्दशहर, जहाँगीराबाद, अलीगढ़ आदि स्थानों से रात को ही पहुच गये। दूसरे दिन इनकी संख्या बहुत बढ़ गई। ८ बजे के ९ अक्टूबर वाले सत्संग के शुभारम्भ होने से पहले प्रात ५ बजे से मुझ इन प्यारे भोले-भाले श्रद्धालु सत्संगियों से मिलते-मिलते करीब ३ घण्टे हो गये। इनका अपना विश्वास और इनकी भक्ति उनके सभी काम बनाती है। किन्तु वह भोलेपन में यह समझते हैं कि मानव दयाल प्रगट होकर उनके काम करता है। मैं उन्हें हर बार समझाता हूँ कि उनका विश्वास, उनकी श्रद्धा और उनके अपने कर्म ही उनके चमत्कारों का कारण होते हैं। इसलिये मैं उन्हें हमेशा यह सच्चाई बताते हुए कहता हूं कि यदि वह मेरे अन्तर में अविनाशी तत्व को प्यार करगे और गुरु के असली स्वरूप को समझेंगे, तो वह चमत्कारों से ऊपर उठकर जीवनमुक्त अवस्था को पा जायेंगे। मैंने पिछले ८ वर्षों में देखा है कि इस सच्चाई को जताने पे और सच्चे दिल से सद्भावना और आशीर्वाद देने से सत्संगियों का विश्वास टूटता नहीं, बल्कि और भी पक्का हो जाता है। उनकी मनोकामनाऐं भी पूरी हो जाती हैं। और वे ज्ञानी भक्त बन जाते हैं। इस प्रकार उनका लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

९ अक्टूबर के दोनों सत्संगियों की भीड़ बहुत अधिक थीं। सैकड़ों सत्संगी सत्संग भवन के तीनों तरफ बाहर खड़े हुए मस्ती से सत्संग सुनते रहे। मालिक की मौज से दोनों सत्संगों में ऐसा वातावरण बना कि सत्संगी घण्टों तक चुपचाप मानो समाधिस्त होकर मेरी वाणी का रसास्वादन कर रहे

थे। मैं स्वयं सत्संग देते समय शरीर और मन के आभास से ऊपर उठकर मानो किसी दिव्यधारा में बह रहा था। एक बार जब मैंने सत्संग देते हुये कु० साधना को शब्द को अगली कड़ी पढ़ने को कहा, तो वह भी सत्संग में इतनी महब थी कि उसे होश में आने में कुछ समय लगा। इन दोनों सत्सँगों में आचार्य कैप्टिन लाल चन्द्र ने हमेशा की भाँति सत्संगियों को अपने अनुभव के आधार पर उदबोधन दिया। इसी प्रकार आचार्य शब्दानन्द और आचार्य के० पी० वर्मा ने भी अपने सत्संगों से संगत को लाभ पहुचाया। १० अक्टूबर को सत्संग आशीर्वाद सत्संग था। इसमें भी सत्संगी हजारों की संख्या में भक्ति रस का अनुभव करते हुये लाभान्वित हुये। इसमेंकाई सन्देह नहीं कि इस बार सलवान स्कूल के दशहरे के सत्संग बहुत प्रभावशाली रहे।

अक्टूबर के महीन के सत्सँग के दौरे के सम्बन्ध में कुछ सूचनाऐं गलत छप गई थीं। सरसोंहेरी का सत्संग स्थगित कर दिया गया था। क्योंकि मुझे २२, २३ और २४ अक्टूबर को लखनऊ, स्वामी रामतीर्थ के ११६ वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में पहुँचना था। इसलिते हम इन तीन दिनों के लिये रेल क द्वारा होशियारतुर से लखनऊ पहुंचे। इस बार हमारे साथ आचार्य शब्दानन्द, श्री नरायनदास, डोगरा, कुमारी साधना, और श्रीमती राजकुमारी भी थीं। श्री रामतीर्थ जन्म शताब्दी के अधिवेशनों में मैंने हर वर्ष की भाँति अपने अनुभव व्यक्त किये। इन अधिवेशनों में दूसरे सन्त आचार्य और विशेषकर सन्याशी मठाधीश भी शामिल थे। श्रावकों की संख्या हर वर्ष की भाँति हजारों तक पहुच गई। इस अवसर पर मेरे सत्संग भी प्रभावशाली रहे क्योंकि यह अधिवेशन रात्रि के समय होते थे इसलिये प्रातःकाल और सायंकाल आचार्य कृष्णमोहन

तिवारी के घर पर सत्संग आयोजित हुआ करते थे । सत्संगी दूर-दूर से इस अवसर पर श्री तिवारी जी के घर पर आये । इस दौरान में एक सत्संग पेपर मिल कालोनी में भी हुआ ।

हम वास्तव में २१ अक्टूबर को ही लखनऊ पहुंच गये थे और २७ अक्टूबर तक लखनऊ रहे । इस दौरान में हम एक दिन के लिये गोरखपुर गये और एक दिन के लिये कन्नौज भी गये । इस सम्बन्ध में मैं अधिक विस्तार से सूचनां न देकर, कुछ घटनाऐं आपको सुनाना चाहूंगा । हम गोरखपुर इसलिये गये, क्योंकि वहाँ आचार्य श्री क० पी० वर्मा की माताश्री अस्वस्थ चल रही थीं । श्री के० पी० वर्मा तथा उनकी योग्य धर्म पत्नी श्रीमती सुधा वर्मा जो हमारे साथ दिल्ली से रेल द्वारा लखनऊ तक आये थे, हमारे से एक दिन पहले गोरखपुर पहुंच चुके थे । हम श्री कृष्ण मोहन तिवारी की कार से गोरखपुर पहुँचे । रास्ते में हमें राम जन्म भूमि से गुजरते देरी इसलिये लग गई कि एक मीलों लम्बा लाखों प्रदर्शकों का जुलूस धार्मिक सद्भावना को दृष्टि से उस इलाके से गुजर रहा था । हमारा विचार राम जन्म भूमि देखने का था, किन्तु देरी होने के कारण हमने निश्चय किया कि लौटती बार हम अवश्य इस पुन्य भूमि का अवलोकन करेंगे । हम जिस समय गोरखपुर पहुंचे, सत्संग का समय हो चुका था इसलिये हम थोड़ समय श्री क० पी० वर्मा के घर सत्संग भवन में पहुंच गये । इस सत्संग में गोरखपुर के सत्संगी वहाँ के बुद्धिजीवी और नागरिक बहुत अधिक संख्या में सम्मिलित हुये । सत्संग बहुत ही प्रभावशाली रहा । बहुत से बुद्धि ीवी प्रोफेसर, वकील आदि सत्संग के बाद भी आचार्य वर्मा जी के घर पर मुझे मिलने आये, और उनमें से कुछ लोगों ने आग्रहपूर्वक

नामदान भी लिया। मानवता धर्म की सत्यता और उसकी सरलता विश्व भर में स्वीकार की जा रही है। मेरे परमप्रिय सत्संगियो ! मुझे आपको यह बताते हुये अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि यूरोप में, अमेरिका में, ट्रिनीडाड में, कैनेडा, फिलीपीन, जापान और चीन तक आपके गुरुभाई सत्संगा हैं और वे अलग-अलग धर्मों से सम्बन्धित हैं। यह सभी आपकी तरह मानव परिवार के सदस्य है और कभी न कभी आपको मानवता के किसी विशाल सम्मेलन में भारत में ही मिलेगे। मेरे मन में यह विचार आया है कि मानव धाम के निर्मित होने के बाद, हम एक अपने मानव परिवार के विश्व-व्यापी सत्संगियों को एक विशाल सम्मेलन में बुलाये,जहाँ आप सब एक दूसरे से साक्षात् रूप से मिल सकें। यह बात इस मासिक सन्देश में आप तक पहुंचाते हुए मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं आपसे आमने-सामने बात कर रहा हूँ और आप भी मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार कर रहे हैं। इसी सन्देश द्वारा मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मेरे इस सुझाव के सम्बन्ध में आप अपने विचार मुझे पत्र द्वारा लिखकर भेजें।

मेरे प्रिय अंश स्वरूप, सद्गुरु रूप सत्संगी भाई और बहनो ! गोरखपुर का दौरा बहुत सफल रहा। आचार्य श्री के० पी० वर्मा जी की माताश्री बहुत प्रसन्न हुईं, और उनकी अगाध श्रद्धा के कारण,उनकी बीमारी में सुधार हुआ। अधिक विस्तार में न कहकर मैं आपको गोरखपुर से लौटते हुए कुछ अनुभवों से अवगत कराना चाहता हूँ। गोरखपुर से चलकर हम अयोध्या से पहले मगहर में कबीर साहब की समाधि पर रुके। इस समाधि के साथ-साथ मुसलमान भाइयों द्वारा निर्मित कबीर साहब की दरगाह है, किन्तु आनन्द की बात

यह है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों स्मारकों में जाते हैं, और कबीर साहब के गुण गाते हैं। कबीर साहब के इस स्थान पर एक विशेष शान्ति का वातावरण है। हम समाधि पर कुछ देर ठहरे और वहाँ के प्रबन्धक साधुओं से वार्तालाप किया। उसके बाद हम दरगाह में गये और वहां भी मुसलमान कर्मचारियों से प्रेमपूर्वक बातचीत की। हम दरगाह में उस गुफा में भी गये, जहाँ कबीर साहब ने चोला छोड़ने से पहले कई दिन समाधि लगायी थी। यहां का वातावरण भी बहुत सुखदायक है। प्रसन्नता की बात यह है कि भारत सरकार ने करोड़ों रुपये लगाकर इन दोनों स्मारकों को एक साथ सुन्दर बनाने का कार्य सौंप दिया है।

इसके बाद हम अयोध्या पहुंचे और हमने राम जन्म भूमि के दर्शन किये। यद्यपि राजनीति के कारण इस पुण्य स्थान को विरोध का आधार बना दिया गया है, तथापि यह राम जन्म भूमि ही हिन्दू मुसलमानों में ही नहीं बल्कि सभी धर्मों के अनुयाइयों में सद्भावना, प्रेम और परस्पर सहयोग एवं मानसिक शान्ति प्रदान कर सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस भवन में राम पैदा हुये थे, और जिसे बाद में बाबर ने कुछ परिवर्तन करके मस्जिद का रूप दे दिया था वास्तव में महाराजा दशरथ द्वारा निर्मित महल है। उस समय के महल के स्तम्भ अभी तक मौजूद हैं। करीब ५० वर्षों से इस भवन में भगवान श्री राम की पूजा, सत्संग और भजन, कीर्तन होता रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान श्री राम बाबर से हजारों वर्ष पूर्व प्रगट हुये और उन्होंने विश्व भर के लिये एक आदर्श राज्य की स्थापना की जिसे रामराज्य कहा जाता है। चाहे हमारे मुसलमान भाई राम को अवतार न भी मानें

ऐतिहासिक दृष्टि से और शुद्ध हृदय से उन्हें यह स्वीक र करना होगा कि राम एक आदर्श राजा थे। और जिस समय उन्होंने एक आदर्श राज्य का नमूना पेश किया उस समय खासकर भारतीय वर्तमान मुसलमानों के पूर्वज मुसलमान नहीं थे। उस समय वे हिन्दू भी नहीं थे। वे वास्तव म आदर्श भारतीय थे, आर्य थे अर्थात् ऋषियों की सन्तान थे। हिन्दू शब्द न वेदों में, न भगवद् गीता में और न ही उपनिषदों में और न पुराणों में मिलता है। इसी दृष्टि से मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि जिस प्रकार मगहर में कबीर साहब की समाधि और दरगाह एक ही ईश्वर का नमूना बनते हुये, प्रेम और सहयोग का सन्देश दे रहे है, उसी प्रकार राम जन्म भूमि को धर्म के विरोध से ऊपर मानकर, एक रामराज्य की प्रेरणा-दायक भूमि मानना चाहिये।

जहाँ तक लखनऊ और गोरखपुर के दौरे का सम्बंध है, ऊपर दी गई सूचना आपके लिये काफी रहेगी। एक और सूचना जो आपके सुनने के लायक है, कन्नौज के ऐक दिन के प्रवास के सम्बंध में है। यूं तो कन्नौज का दौरा हमेशा बसंत के अवसर पर होता है। मैं कंनौज एक दिन के लिये इसलिये गया, क्योंकि मेरे परमप्रिय स्वर्गीय मनोहरलाल की सुपुत्री का विवाह कुछ समय पहले हुआ था और मैं विदेशी दौरे के कारण वहां नहीं पहुँच सका था। आप सब जानते हैं कि मेरा मानव परिवार के साथ अनूठा सम्बध है। मैं आपका भाई भी हूँ, पिता भी हूँ माता भी हूँ और सुहृदय मित्र भी हूं। इस लिये मुझे जहां तक हो सके आप सबके दु:ख-सुख में शामिल होना चाहिये और होता रहूँगा। मेरे परम प्रिय मनोहरलाल वर्मा की अनुपस्थिति में मुझे उस परिवार के लिये विशेषकर

उनकी पुत्री के विवाह पर पिता का कर्त्तव्य निभाना था। केवल इसी विचार से हम सब कन्नौज प्रातः को पहुँच गये। सभी सत्संगी तुरन्त एकत्रित हो गये और उन्होंने बड़ी श्रद्धा से हमारा स्वागत किया। दीपारगंज के बहुत से सत्संगी भी वहाँ उपस्थित थे। सायंकाल एक विशाल सत्संग आयोजित हुआ जिसमें मकरन्द नगर और दीपारगंज के सत्संगी मौजूद थे।

सत्संग के बाद दीपारगंज के मुख्य सत्संगी, जिनमें मीराबाई भी सम्मिलित थीं, मेरे पास आये और कहा कि कुछ समय के लिये मुझे दीदारगंज चलकर सत्संग देना चाहिये मेरी अपनी आत्मा के अंश, मेरे परम प्रिय इष्ट रूप सत्संगियो ! आप जानते हैं कि मैं ९९ प्रतिशत किसी की भी उसकी इच्छा पूर्ति के लिये इन्कार नहीं करता किन्तु उस दिन मैं गोरखपुर आदि के सफर के कारण और लगातार कई दिनों से केवल तीन घण्टे नींद करने के कारण बहुत थक चुका था। इसलिये मैंने दीदारगंज के सत्संगियों से कहा– मेरे प्यारे दीदारगंज वासियो ! मैं आपकी श्रद्धा को जानता हूँ, और आपके प्रेम का आदर करता हूँ। दीदारगंज यहाँ से केवल दो–तीन किमी० दूर है। आपका यह आग्रह करना उचित है कि मुझे थोड़ा समय सत्संग के लिये दीदारगंज को भी देना चाहिये। मैं आपको यह बताना चाहता हू कि इस बार में मनोहरलाल के परिवार के लिये आया हूँ, दौरे पर नहीं आया हूं। जब भी मैं सत्संग के दौरे पर आऊंगा दीदारगंज को उतना ही समय दूंगा जितना कन्नौज में मकरन्दनगर को देता हूँ। इस समय रात के १० बजने वाले हैं। मुझे विश्राम करना है। आप मुझे क्षमा कर दें।

उन्होंने उत्तर दिया– 'महाराज ! हम आपसे इसलिये

प्रार्थना कर रहे हैं क्योंकि दीपारगंज में हमारे बहुत से सत्संगी और सम्बेन्धी इसी दृष्टि से वहाँ इकट्ठे हो गये हैं कि वे आपके दर्शन कर सकें। आप केवल १०-१५ मिनट के लिये वहाँ चलें और उन्हें दर्शन दें। मैंने उन्हें बड़े प्रेम से उत्तर दिया, 'मैं आपकी भावना का सत्कार करता हूँ। किन्तु मैं इतना थका हुआ हूँ कि दीदारगंज चलने से मैं १२ बजे तक वापस आ सकता हूँ और इसके फलस्वरूप मैं केवल ३ घण्टे ही सो सकता हूँ। इसलिये आप उन लोगों को बाहर से आये हुये हैं प्रातःकाल ८ बजे हमारे रवाना होने से पहले लायें और मैं उन्हें यहाँ मिलूंगा।' मेरे ऐसे कहने पर वह चुप हो गये। उनमें से दो चार व्यक्ति दीदारगंज इसलिये चले गये कि वे सबको प्रातः काल मकरन्द नगर में ले आयें।

किन्तु इसी दौरान मैं उन सत्संगियों से अलग-अलग बड़े दर्ददिल से श्री कृष्णमोहन तिवारी को नारायणदास को और साधना की प्रार्थना की कि वे उनकी इच्छापूर्ति के लिये सिफारिश करें। इन तीनों ने मुझे मिलकर के बड़ी श्रद्धा से प्रार्थना की कि मैं थोड़े समय के लिये अवश्य दीदारगंज हो आऊँ। मैंने जब इनको अपनी थकावट और स्वास्थ्य की दुहाई दी तो वे बेचारे चुप हो गये। इस स्थिति का नक्शा प्रातःकाल बदल गया। मैंने पहली समाधि के बाद ४ बजे प्रातःकाल घोषित कर दिया कि हम सब ४।। बजे ही दीदारगंज के लिये रवाना हो जायेंगे और वहाँ के सत्संगियों को मिलकर वापस आ जायेंगे। मेरी इस बात को सुनकर श्री तिवारी नरायन दास और साधना तथा दीदारगंज के ठहरे हुए सत्संगी बहुत प्रसन्न हुये। हम सब ५ बजे कार द्वारा दीदारगंज पहुँच गये, जबकि वहाँ के सत्संगी मकरन्द नगर आने की तैयारी कर रहे थे।

वे सब गद्-गद् हो गये। मैंने न ही उन्हें आशीर्वाद दिया बल्कि सभी को उस कमरे में बिठा दिया जिसमें वे सब मिल कर समाधि ध्यान लगाया करते थे। साधना ने दातादयाल जी का एक शब्द पढ़ा और मैंने करीब आधा घण्टा सत्संग दे दिया। वास्तव में यह छोटा सा सत्संग बहुत उच्चकोटि का था। सभी ने इसमें मस्ती का अनुभव किया। श्री नरायनदास विशेषकर इससे बहुत प्रभावित हुये। और मेरी प्रशंसा करते रहे।

इस मासिक सन्देश को संक्षिप्त करते हुये मैं आपको केवल यह बता देना चाहता हूँ कि हम लखनऊ से लौटते समय एक दिन के लिये सहारपुर उतर कर सरसोंहेरी ठहरे। सरसोंहेरी के सभी सत्संगी बहुत प्रसन्न हुये। पूरा दिन वहाँ ठहरने के बाद, सत्संग देने के बाद हम दूसरे दिन प्रातःकाल मैटाडोर से रवाना होकर २६ अक्टूबर को होशियारपुर पहुँच गये। श्री हरिवंश माल ऐक रात पहले ही मैटाडोर लेकर सहारनपुर पहँच गये थे। इस संदेश में यहाँ तक कि सूचना काफी रहेगी। अगली सूचना मैं आपको अगले मासिक संदेश में दे सकूंगा। इन सब शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की सद्भावना देता हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आप सुखी, स्वस्थ और आनन्दमय हों।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय

मानव

R. S.

गाफिल शब्दावली से : –

शब्द

तेरे बिना कौन है दाता मेरा इस संसार में ।
तुम लगा दो पार मुझको, किश्ती बहे मझदार में ।१।

भूल थी मैंने जो समझा, मेरा घर और बाहर है ।
अब समझ मुझको पड़ी, मेरा नहीं कोई परिवार है ।२।

तेरी यह लीला थी जिसे, गल्ती से समझा गलत मैं ।
अपनी खुदगर्जी का परदा, ले गया था मुझे गार में ।३।

तेरी संगत गर न मिलती, कौन समझाता मुझे ।
भेद कैसे मिलता मुझको, वार में और पार में ।४।

तू ही साधु, सन्त तू ही, गुरु तू ही, चेला तू ही ।
तू ही कौरव, तू ही पाँडव, तू ही कृष्ण मुरार में ।५।

देखने वाली नजर कैसे, मिले क्यों कर मिले ।
खाली जा सकता नहीं, जो आया इस दरबार में ।६।

जादू कर देती है तेरी, चश्म रूहानी मदाम ।
मस्त हो जाते हैं सब, ऐसा असर गुफ्तार में ।७।

बस गया है जिसके दिल तू, उसको है परवाह क्या ।
गूंजते हों शब्द बनकर, गाफिल' की हर रग तार में ।८

—:o:—

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—

'मनुष्य बनो' कार्यालय

शिव भवन, लेखराज नगर

अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक

महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक

श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या—

श्रीमान्

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर, अलीगढ़।